शोधामृत
(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-4.0
Vol.-3; issue-1 (Jan.-March) 2026
Page No- 123-126
©2026 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

Author's :

राम खिलाड़ी मीना

Assistant Professor, राजकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय लालसोट, दौसा. शोधार्थी – मानविकी संकाय, संस्कृत विभाग (MLSU Udaipur).

Corresponding Author :

राम खिलाड़ी मीना

Assistant Professor, राजकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय लालसोट, दौसा. शोधार्थी – मानविकी संकाय, संस्कृत विभाग (MLSU Udaipur).

संस्कृत साहित्य में क्रीड़ा-विमर्श स्वरूप एवं प्रासंगिकता

सारांश (Abstract) : भारतीय परंपरा में क्रीड़ा केवल शारीरिक श्रम ही नहीं, अपितु आत्माभिव्यक्ति का साधन हैं। संस्कृत साहित्य एवं क्रीड़ा का संबंध अत्यंत प्राचीन हैं। वैदिक साहित्य में क्रीड़ा शारीरिक सामर्थ्य, बल, गति और पुरुषार्थ की परिचायक हैं। वही संस्कृत नाट्य एवं काव्य साहित्य में इसका स्वरूप अधिक कोमल, सौंदर्यात्मक और रस प्रधान हो जाता हैं। आयुर्वेदिक ग्रंथों में क्रीड़ा को स्वास्थ्य-संरक्षण, पाचन-सुधार और मानसिक प्रसन्नता का साधन माना गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य संस्कृत साहित्य में क्रीड़ा की अवधारणा, उसका स्वरूप, सामाजिक उपयोगिता और आधुनिक संदर्भ में उसकी प्रासंगिकता का अनुशीलन हैं। इस शोध से यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन संस्कृत साहित्य की क्रीड़ाएं भौतिक विजय से अधिक शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक संतुलन पर केंद्रित थीं ।

मुख्य शब्दः- संस्कृत वाङ्मय, क्रीड़ा-दर्शन, व्यायाम, मल्लयुद्ध, आयुर्वेद, सांस्कृतिक प्रासंगिकता।

प्रस्तावना : संस्कृत साहित्य विश्व का प्राचीनतम साहित्य हैं जो मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करता हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति में क्रीड़ा केवल मनोरंजन ही नहीं, अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानसिक विकास का महत्वपूर्ण साधन रही हैं। भारतीय संस्कृति में शरीर को धर्म का प्रथम साधन माना गया हैं ।

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"[1]

संस्कृत में क्रीड़ा शब्द 'क्रीड्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है— क्रीड़ा करना,खेलना, आनंदित होना। यह क्रीड़ा जब शरीर को स्वस्थ रखने के लिए की जाती है, तो 'व्यायाम' कहलाती है। ऐतिहासिक रूप से भारतीय क्रीड़ा परंपरा अत्यंत समृद्धशाली रही है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में रथों की दौड़ और घोड़ों के प्रशिक्षण का विस्तृत विवरण मिलता है। यह उस समय की प्रमुख राजकीय और सामाजिक क्रीड़ा थी। क्रीड़ा मानव जीवन की सहज और स्वाभाविक प्रवृत्ति है, जो आदिकाल से ही मानव समाज के शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक विकास से जुड़ी रही है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में क्रीड़ा

को केवल मनोरंजन का साधन नहीं माना गया, अपितु उसे जीवन की समग्र साधना से जोड़कर देखा गया है। संस्कृत साहित्य भारतीय ज्ञान-परंपरा का मूल आधार है, जो क्रीड़ा के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता हैं।

संस्कृत साहित्य में क्रीड़ा-विमर्श :- वैदिक काल से लेकर महाकाव्य, नाट्य, काव्य और आयुर्वेदिक साहित्य तक क्रीड़ा का व्यापक और सुसंगत स्वरूप उपलब्ध होता है। वैदिक साहित्य में शारीरिक सामर्थ्य, बल, गति और पुरुषार्थ के संकेत प्राप्त होते हैं, जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध क्रीड़ा से है। वेदों में जहाँ श्रम, अभ्यास और अनुशासन को जीवन का अनिवार्य अंग माना गया है। वैदिक साहित्य में क्रीड़ा के संकेत प्रत्यक्ष रूप से भले ही कम हो, किंतु शारीरिक बल, गति और पुरुषार्थ की अवधारणाएँ क्रीड़ा-संस्कृति की पृष्ठभूमि निर्मित करती हैं। ऋग्वेद में 'बल' और 'वीर्य' की प्रशंसा करते हुए कहा गया है—

बलं दधाना ओजसा सहोभिः[2]

यहाँ 'बल' और 'ओज' जैसे शब्द शारीरिक सामर्थ्य की ओर संकेत करते हैं, जो क्रीड़ा का मूल आधार है। वैदिक युग में शरीर की सक्रियता को जीवन-ऊर्जा का स्रोत माना गया, जो आगे चलकर क्रीड़ा के व्यवस्थित रूप में विकसित हुई। आयुर्वेदिक ग्रंथों क्रीड़ा और व्यायाम के सूक्ष्म सिद्धांतों का वर्णन है। आचार्य चरक ने चरकसंहिता में शारीरिक सक्रियता के महत्व पर बल देते हुए कहा हैं—

लाघवं कर्मसामर्थ्य स्थैर्य दुःखसहिष्णुता।[3]
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ॥

यह श्लोक स्पष्ट करता है कि क्रीड़ा अथवा व्यायाम से शरीर हल्का, बलवान और रोग-प्रतिरोधी बनता है। इससे सिद्ध होता है कि क्रीड़ा केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि जीवन-रक्षा का माध्यम भी है। रामायण और महाभारत में धनुर्विद्या, रथचालन, गदायुद्ध, मल्लयुद्ध, अश्वारोहण आदि क्रीड़ाएँ केवल युद्ध-कौशल नहीं हैं, बल्कि वे राजधर्म, क्षात्र-नीति और नैतिक मर्यादा से गहराई से जुड़ी हुई हैं।

महाकाव्यकाल में क्रीड़ा का स्वरूप अत्यंत स्पष्ट, संगठित और उद्देश्यपूर्ण हो जाता है। रामायण में धनुर्विद्या और शस्त्राभ्यास को राजकुमारों की अनिवार्य क्रीड़ा के रूप में प्रस्तुत किया है। महाभारत में क्रीड़ा के विविध रूपों—मल्लयुद्ध, धनुर्विद्या, अश्वारोहण तथा द्यूतक्रीड़ा—का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। मल्लयुद्ध के संदर्भ में भीम और जरासंध का युद्ध केवल युद्ध नहीं, बल्कि शारीरिक क्रीड़ा का चरम रूप है। भीम की शक्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है—

मल्लानामिव शार्दूलो बलवान् पाण्डुनन्दनः।[4]

यह उपमा स्पष्ट करती है कि मल्लयुद्ध एक सुव्यवस्थित क्रीड़ा थी, जिसमें बल, कौशल और अभ्यास का विशेष महत्व था। महाभारत में द्यूतक्रीड़ा का प्रसंग यह स्पष्ट करता है कि क्रीड़ा का अतिरेक कैसे सामाजिक और नैतिक पतन का कारण बन सकता है। यह द्यूतक्रीड़ा के नकारात्मक पक्ष को भी उजागर करता है—

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्॥ [5]

यह श्लोक बताता है कि असंयमित क्रीड़ा व्यक्ति और समाज दोनों के लिए विनाशकारी हो सकती है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य क्रीड़ा के प्रति केवल उत्साह नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण दृष्टि भी प्रस्तुत करता है। अतः संस्कृत साहित्य संतुलन, मर्यादा और विवेक को क्रीड़ा का अनिवार्य आधार मानता है।

शूद्रक-विरचित मृच्छकटिकम् में द्यूतक्रीड़ा की प्रशंसा की गई हैं।

'द्यूतं हि नाम पुरुषस्य असिंहासनं राज्यम्'[6]

मत्स्य तथा विष्णु पुराण-दोनों में द्यूतक्रीड़ा का उल्लेख मिलता हैं। कालिदास के रघुवंश से राजा दशरथ की मृगया क्रीड़ा की जानकारी प्राप्त होती हैं। मत्स्य, विष्णु, वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में राजाओं के आखेट-प्रेम का

भी सजीव वर्णन मिलता है। कहीं-कहीं मृगया के दुष्परिणामों पर भी प्रकाश डाला गया है।

संस्कृत नाट्य एवं काव्य साहित्य में क्रीड़ा का स्वरुप अधिक कोमल, सौंदर्यात्मक हैं। जलक्रीड़ा प्राचीन भारतीय समाज में आनंद और मनोरंजन का एक महत्वपूर्ण साधन थी। कालिदास के कुमारसंभव, ऋतुसंहार तथा मेघदूत जैसे काव्यों में जलक्रीड़ा, ऋतुकालीन विहार और वनविहार का वर्णन मिलता हैं। ऋतुसंहार में ग्रीष्म ऋतु की जलक्रीड़ा का वर्णन अत्यंत मनोहर है—

सलिलक्रीडासु रमन्ते युवतयः सह प्रियैः।[7]

यहाँ क्रीड़ा आनंद, प्रेम और प्रकृति से जुड़कर जीवन की रसात्मकता को अभिव्यक्त करती है। कालिदास, भारवि और माघ जैसे कवियों ने क्रीड़ा के सुकुमार पक्ष का वर्णन किया है। 'शिशुपालवध' में सरोवरों में की जाने वाली जल-क्रीड़ाओं का वर्णन रसात्मकता और व्यायाम दोनों का पुट देता हैं।

निर्धौते सति हरिचन्दने जलौघैरापाण्डोर्गतपरभागयाङ्गनायाः।
अह्राय स्तनकलशद्वयादुपेये विच्छेदः सहृदययेव हारयष्ट्या।। [8]

रमणियों के वक्षःस्थल पर लगे हुए हरिचन्दन लेप के पानी से धोये जाने पर रमणियों के निर्मल दोनों स्तनकलशों से कम पड़े हुए गुणाधिक्यवाला मुक्ताहार मानो सहृदय के समान झट टूट गया।
भारवि ने किरातार्जुनीयम् के अष्टम् सर्ग में अप्सराओं की जल क्रीड़ा का वर्णन किया गया है।

हृदाम्भसि व्यस्त वधूकराहते रवं मृदङ्गध्वनिधीरमुज्झति।
मुहुः स्तनैस्तालसमं समाददे मनोरमं नृत्यमिव प्रवेपितम्॥ [9]

सुराङ्गनाएँ जलविहार के समय अपने उलटे हाथों से ह्रद के जल को ताडन करती थी उस काल में उससे मृदङ्ग के समान ध्वनि निकलती थी उनके स्तन प्रत्येक ताडन काल में हिलते थे ऐसा ज्ञात होता था जैसे मनोहर नृत्य कर रहे हों ।।

महाकवि कालिदास ने अपने ग्रंथ रघुवंशम् में ग्रीष्म ऋतु में जल में क्रीड़ा करती हुई स्त्रियों का विस्तृत वर्णन किया हैं। राजा कुश का स्त्रियों के साथ में जल क्रीड़ा करने का उल्लेख मिलता हैं।

आसां जलास्फालनतत्पराणां मुक्ताफलस्पर्धिषु शीकरेषु।
पयोधरोत्सर्पिषु शीर्यमाणः संल्लक्ष्यते न च्छिदुरोऽपि हारः॥ [10]

जल-क्रीडा में आसक्त इन रानियों को यह भी पता नहीं है कि हमारे हार टूट गये हैं और मोती बिखर गये हैं। ये उन मोतियों के समान बूदों को ही मोती मानकर समझ बैठी हैं कि हार टूटा नहीं है।।

दण्डी के 'दशकुमारचरित' में कन्दुक क्रीड़ा का वर्णन है, जो शारीरिक संतुलन और लयबद्धता का अनूठा संगम है।[11]

प्राचीन परम्परा के अनुसार वसंत के अवसर पर कन्याएँ, युवतियाँ और स्त्रियाँ जलक्रीड़ा, कन्दुक क्रीड़ा, वनविहार आदि क्रीड़ाओं में भाग लेती थीं।

संस्कृत वाङ्मय में क्रीड़ा का स्वरूप बहुआयामी है। कहीं यह शारीरिक शक्ति और साहस का रूप ग्रहण करती है, कहीं बौद्धिक कौशल और रणनीति का, तो कहीं सामाजिक समरसता और सामूहिक आनंद का। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में क्रीड़ा जीवन की समग्र साधना के रूप में प्रतिष्ठित है। वह कहीं वीरता और अनुशासन का माध्यम है, कहीं सौंदर्य और आनंद की अभिव्यक्ति, तो कहीं स्वास्थ्य और सामाजिक संतुलन का साधन। संस्कृत साहित्य क्रीड़ा को न तो मात्र खेल मानता है और न ही उसे निषिद्ध करता है, बल्कि उसे मर्यादा, संयम और उद्देश्य के साथ अपनाने की प्रेरणा देता है। यही कारण है कि संस्कृत वाङ्मय में क्रीड़ा भारतीय जीवन-दर्शन का एक सशक्त और स्थायी तत्व बनकर उभरती है। आधुनिक खेल संस्कृति किसी बाह्य प्रभाव की देन नहीं, बल्कि भारतीय क्रीड़ा-परंपरा का विकसित रूप है।

आधुनिक काल में ओलम्पिक, राष्ट्रीय खेल, विद्यालयी क्रीडा, योग और व्यायाम जैसे विषय संस्कृत

साहित्य में स्थान प्राप्त करते हैं। क्रीड़ा यहाँ जीवन-संघर्ष का रूपक बनकर सामने आती है। प्राचीन संस्कृत साहित्य-ऋग्वेद, यजुर्वेद, ब्राह्मण ग्रंथों, महाभारत, रामायण तथा पुराणों में क्रीड़ा के विविध रूप जैसे द्यूत, रथकीड़ा, धनुर्विद्या, जलक्रीड़ा, आखेट तथा नृत्य-संगीत आदि का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। किंतु आधुनिक संस्कृत साहित्य में क्रीडा-विषय का स्वरूप केवल परंपरा का अनुगामी न होकर, समकालीन सामाजिक, शैक्षिक और राष्ट्रीय चेतना से भी जुड जाता है।

निष्कर्ष : संस्कृत साहित्य में क्रीड़ा एक पूर्ण 'जीवन-दर्शन' है। वेदों की ऊर्जा, महाकाव्यों का अनुशासन, आयुर्वेद का विज्ञान और काव्यों का सौंदर्य—इन सब का संगम ही भारतीय क्रीड़ा परंपरा है। अतः समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि क्रीड़ा संस्कृत साहित्य में जीवन की एक अनिवार्य, संतुलित और मूल्यनिष्ठ प्रक्रिया के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत शोध उसी परंपरा का साहित्यिक, सांस्कृतिक अध्ययन करते हुए यह प्रतिपादित करता है कि क्रीड़ा भारतीय जीवन-दर्शन का अभिन्न अंग रही है और आधुनिक युग में भी उसकी प्रासंगिकता अक्षुण्ण है। मानव जीवन की सहज, स्वाभाविक और अनिवार्य प्रवृत्ति के रूप में स्थापित है। यहाँ क्रीड़ा केवल मनोरंजन अथवा समय-व्यतीत का साधन नहीं, बल्कि शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास का माध्यम मानी गई है।

सन्दर्भ सूची :

1. कुमारसंभव,पंचम् सर्ग,व्याख्याकार – डॉ. विनोद बिहारी शर्मा, हंसा प्रकाशन जयपुर,पृष्ठ संख्या 53 संस्करण 2016,
2. ऋग्वेद 1.32.1.
3. चरकसंहिता, सूत्रस्थान 7.32.
4. महाभारत, सभापर्व 2.21.15.
5. भगवद्गीता 10.36.
6. मृच्छकटिकम्,शूद्रक, प्रथम अंक,पृष्ठ संख्या 73, श्लोक 7.
7. ऋतुसंहार, ग्रीष्मवर्णन
8. शिशुपालवध,माघ,व्याख्याकार – श्री पण्डित हरगोविंद शास्त्री,चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 2013, अष्टम् सर्ग,पृष्ठ संख्या – 371.
9. किरातार्जुनीयम्,भारवि, बद्रीनारायण मिश्र,चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2015 पृष्ठ संख्या 215.
10. रघुवंश, कालिदास,व्याख्याकार :- डॉ. कृष्ण मणि त्रिपाठी,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2014, पृष्ठ संख्या 554
11. प्राचीन भारत में नारी, उर्मिला प्रकाश मिश्रा,पृ.सं. 202.

•